बच्चे जवाब ढूंढ़ने को तत्पर रहें

प्रो. जयन्त नार्लिकर

बच्चों में गहरी जिज्ञासा तथा कुछ नया सीखने–करने की प्रबल इच्छा होती है। लेकिन हमारी शिक्षा प्रणाली इन प्रवृत्तियों को नकारती और कुचलती है। बच्चों की इन प्रवृत्तियों को बढ़ावा दिया जाए तो वे बहुत कुछ नया और महत्वपूर्ण कर सकते हैं। इन्हीं मुद्दों के इर्द–गिर्द घूमता है अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त वैज्ञानिक *प्रो. जयन्त नार्लिकर* का यह अनूदित लेख जो 23 मई, 2000 के अँग्रेज़ी अख़बार *टाइम्स ऑफ़ इंडिया* में छपा था। –सम्पादक

अंग्रेज़ी में एक कहावत है – Curiosity killed the cat, यानी जिज्ञासा ने बिल्ली मार दी (या यूं कहें कि जिज्ञासावश बिल्ली मर गयी)। तो जिज्ञासा को किस ने मारा? अंग्रेज़ी में जवाब है CAT यानी Conformism and Teaching (रूढ़िवाद और शिक्षा) ने। मैं स्कूली शिक्षा के संदर्भ में जिज्ञासा की बात कर रहा हूँ।

मशहूर खगोलवैज्ञानिक फ़्रेड हॉयल (Fred Hoyle) ने अपनी आत्मकथा में प्राइमरी स्कूल के अपने अनुभव को याद किया है। अध्यापक ने छात्रों को बताया कि एक विशेष प्रकार के फूल में पाँच पत्तियां होती हैं। जिज्ञासू फ़्रेड ने इन फूलों को ढूंढ़ कर तथ्यों को परखना चाहा। अधिकतर फूलों की पांच पत्तियां थीं लेकिन एक में छः थीं। उस ने अध्यापक का ध्यान इस तथ्य की ओर आकर्षित किया। चार पत्तियां होतीं तो कहा जा सकता था कि एक गिर गयी है। लेकिन एक अतिरिक्त पत्ती के तथ्य के लिए क्या दलील दी जा सकती थी ? क्या पांच पत्तियों का नियम ग़लत है ? – फ़्रेड ने पूछा। अध्यापक प्रश्न पूछे जाने का आदी नहीं था और उस ने फ़्रेड को एक-दो थप्पड़ रसीद कर दिये। लेकिन फ़्रेड ने भी हथियार नहीं डाले। उस ने दलील दी कि जायज़ सवाल का जवाब देने का यह कोई तरीका नहीं है और अपनी माँ को स्कूल बदलने के लिए राज़ी कर लिया।

ऑटोग्राफ़ हुए जवाब

जहाँ तक बच्चे की जिज्ञासा को दबाने का सवाल है, भारतीय स्कूल कुछ अलग नहीं हैं। बच्चे को सवाल-जवाब रटने के लिए प्रेरित किया जाता है, इस बात की ओर बिल्कुल ध्यान नहीं दिया जाता कि वह विषय वस्तु को समझ गया है या नहीं। विषय वस्तु को न समझ पाने की स्थिति में बच्चों को दिमाग़ में स्वतः स्फूर्त पैदा हुए सवालों के जवाब पाने का कोई मौका नहीं दिया जाता।

इस स्थिति का साक्षात्कार मुझे एक अजीब लेकिन मज़ेदार ढंग से हुआ। कई सालों

प्रोफ़ेसर जयन्त नार्लिकर *अन्तर विश्वविद्यालय केन्द्र : खगोल विज्ञान और खगोल भौतिकी, पुणे के निदेशक हैं।*

से मैं एक स्कीम चला रहा था जिस के तहत विद्यार्थियों को सवाल पूछने के लिए प्रेरित किया जाता था। मेरे सार्वजनिक व्याख्यान के अन्त में मेरे ऑटोग्राफ़ लेने वाले इकट्ठा हो जाते थे। मैं यह कहता कि मेरे ऑटोग्राफ़ उसे ही मिलेंगे जो मुझ से पोस्टकार्ड पर उस विषय सम्बन्धित सवाल पूछेगा जिस पर मैंने भाषण दिया था – मेरे दस्तख़त जवाब के साथ ही मिलेंगे। यह सिलसिला ठीक-ठाक सा ही चला और इस मान्यता पर आधारित था कि ऑटोग्राफ़ लेने के लिए इकट्ठा हुई भीड़ में से थोड़े ही व्याख्यान के विषय के प्रति गंभीर होते होंगे – केवल वे गंभीर ऑटोग्राफ़ के इच्छुक ही इस स्कीम के तहत सम्पर्क करेंगे, ऐसा मेरा अनुमान था। मुझे उन्हें उत्तर लिख भेजना अच्छा लगता था क्योंकि ये प्रश्नकर्ता आत्मस्फूर्त जिज्ञासा के सूचक थे। बाद में मुम्बई की एक स्वयंसेवी संस्था ने इन्हीं सवाल-जवाब पर आधारित एक पुस्तिका भी निकाली जिस का शीर्षक था ***पोस्टकार्डों के माध्यम से विज्ञान।***

अपवादों को छोड़ दें तो हमारे स्कूली पाठ्यक्रम, पढ़ाने के तौर–तरीके तथा इम्तिहान रट्टे और बंधे–बँधाए नियमों से प्रेरित होते हैं। कई कारणों से विद्यार्थियों द्वारा सवाल पूछे जाने को बढ़ावा नहीं दिया जाता – बल्कि उन्हें हतोत्साहित ही किया जाता है।...विषयवस्तु को याद करने और रटने की प्रक्रिया के चलते जिज्ञासा पिछड़ जाती है।

लेकिन हम भारतवासी नेकनीयती से चलाये गये कार्यक्रमों का दुरुपयोग करने में तेज़ हैं। मेरी नीयत सवाल पूछने में आत्म स्फूर्त भावना को बढ़ावा देने की थी। लेकिन कुछ स्कूल अध्यापकों ने पूछे जाने के लिए सवाल बच्चों को लिखवाने शुरू कर दिये। हर हफ़्ते मुझे एक सी भाषा में लिखे प्रश्न और इसी प्रकार एक ही भाषा में ऑटोग्राफ़ के लिए निवेदन करते 50 पोस्टकार्ड मिलने लगे। सब एक ही स्कूल की एक ही कक्षा से होते। ऐसे साधारण किस्म के सवाल भी होते जिन के जवाब कक्षा में अध्यापक को देने चाहिएं थे लेकिन जिन के जवाब वहां नहीं दिये जाते थे – अध्यापकों के विचार में, "डॉ. नार्लिकर सवालों के जवाब तो दे ही रहे हैं, बेहतर होगा कि ये उन्हीं से पूछे जाएं।" अब मैंने अनमना हो कर स्कीम बन्द कर दी है – कारण तो ज़ाहिर ही हैं।

अपवादों को छोड़ दें तो हमारे स्कूली पाठ्यक्रम, पढ़ाने के तौर-तरीके तथा इम्तिहान रट्टे और बंधे-बँधाए नियमों से प्रेरित होते हैं। कई कारणों से विद्यार्थियों द्वारा सवाल पूछे जाने को बढ़ावा नहीं दिया जाता – बल्कि उन्हें हतोत्साहित ही किया जाता है। अध्यापक में सवाल का जवाब देने का आत्मविश्वास नहीं होता। या अच्छा होते हुए भी सवाल पाठ्यक्रम की विषयवस्तु से सम्बद्ध नहीं होता। या फिर कक्षा में विद्यार्थियों की संख्या अधिक होने की वजह से अध्यापक का प्रत्येक विद्यार्थी से सीधा रिश्ता कायम नहीं हो पाता। और फिर पाठ्यक्रम के "भारी-भरकम" होने की वजह से सवाल-जवाब के लिए समय ही नहीं मिलता।

जिज्ञासा नदारद

वजह कोई भी हो, विषयवस्तु को याद करने और रटने की प्रक्रिया के चलते जिज्ञासा पिछड़ जाती है। हम गर्व से कह सकते हैं कि हमारे पूर्वजों ने भी इसी प्रकार ज्ञान हासिल किया – वह ज्ञान जिसे मौखिक रूप से सीखा गया,

याद किया गया और अगली पीढ़ी को सौंपा गया। इसी प्रकार वेदों का ज्ञान एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी को दिया गया। इस से हमें यह भी ज्ञात होता है कि पश्चिमी देशों और चीन की तरह क्यों हमारे पास *लिखित* ज्ञान की दौलत नहीं है।

बहरहाल, रट्टा हमारे ज्ञान को शिथिल बना देता है, उसे एक ही स्थान पर खड़ा कर देता है – उस में कोई वृद्धि नहीं होती न ही कोई विकास हो पाता है। वह रचनात्मकता और मौलिकता को हतोत्साहित करता है। मुझे याद आती है अपने जीवन की एक घटना। जब मैं दसवीं कक्षा में था, मैंने स्वयं पाइथॉगरस थ्योरम का एक सरल और छोटा हल निकाला। छःमाही इम्तिहान में मैंने यह हल दिया। मेरे अध्यापक ने मुझे बुला कर कहा कि यह एक अच्छा हल था और मुझे इस के पूरे अंक दिये जा रहे हैं – लेकिन उन्होंने मुझे सावधान किया कि यह हल मैं बोर्ड के इम्तिहान में न दूं क्योंकि उस इम्तिहान के परीक्षक शायद इसे प्रशंसा की भावना से न देखें। मुझे अब भी उन की कही हुई बात याद है – "यदि परीक्षक एक अन्जाना चित्र देखता है तो तुम्हें शून्य अंक मिलेंगे। वह हल को पढ़ने की ज़हमत भी नहीं उठाएगा क्योंकि उस के पास उत्तर पुस्तिका देखने-पढ़ने का बहुत कम समय होता है।"

जब मैं दसवीं कक्षा में था, मैंने स्वयं पाइथॉगरस थ्योरम का एक सरल और छोटा हल निकाला। छःमाही इम्तिहान में मैंने यह हल दिया। मेरे अध्यापक ने मुझे बुला कर कहा कि यह एक अच्छा हल था और मुझे इस के पूरे अंक दिये जा रहे हैं – लेकिन उन्होंने मुझे सावधान किया यह हल मैं बोर्ड के इम्तिहान में न दूं क्योंकि उस इम्तिहान के परीक्षक शायद इसे प्रशंसा की भावना से न देखें। मुझे अब भी उन की कही हुई बात याद है – "यदि परीक्षक एक अन्जाना चित्र देखता है तो तुम्हें शून्य अंक मिलेंगे। वह हल को पढ़ने की ज़हमत भी नहीं उठाएगा क्योंकि उस के पास उत्तर पुस्तिका देखने–पढ़ने का बहुत कम समय होता है।"

समय की कमी को ही सब से अधिक दोष दिया जाता है। भारी भरकम सिलेबस, कक्षाओं में छात्रों की बड़ी संख्या को पढ़ाते हताश शिक्षक, बन्ध-हड़ताल तथा छुट्टियाँ – इस सब के चलते छात्रों के सवालों के जबाब देने या नए ढंग से सोचने की प्रवृत्ति को बढ़ावा देने का समय किस के पास है? नियम-कानून बनाने वालों को सही प्राथमिकताएं पहचानने में अभी काफ़ी समय लगेगा। इस में भी बहुत समय लगेगा कि और स्कूल बनें, कक्षाएं छोटी हों, और सिलेबस ऐसे कि जो समझने पर बल दें न कि अत्यधिक जानकारी हासिल करने पर।

खोजो और पाओ

इस सब के बावजूद क्या हम छात्रों को अधिक आत्मनिर्भर बनने के लिए प्रेरित कर सकते हैं? या वे अपने सवालों के जवाब स्वयं ढूंढ सकते हैं? जिस प्रकार लुका–छिपी के खेल में किसी को तलाशने में मज़ा आता है, इसी प्रकार सवालों के जवाब तलाशना और पाना भी आनन्ददायक हो सकता है। यदि स्कूल में एन्साइक्लोपीडिया तथा आम तौर पर पूछे जाने वाले प्रश्नों से

सम्बन्धित पुस्तकें हों तो छात्र स्वयं उन पर नज़र डाल सकते हैं और जवाबों तक ख़ुद पहुँच सकते हैं। इन्टरनेट की उपलब्धता बढ़ने तथा सस्ता होने की वजह से कम्प्यूटर इस खोज-बीन के सिलसिले में बहुमूल्य कार्य कर सकता है। साठ साल से अधिक का होने के बावज़ूद मुझ में बच्चे सी उत्तेजना और रोमांच जाग उठता है जब मेरी खोज मुझे ऐसी वेबसाइट तक ले जाती है जहां से मुझे वह जानकारी मिल जाती है जिसे जानने का मैं इच्छुक होता हूँ।

लेकिन यह सब तब ही हो पाएगा यदि स्कूल अधिकारी ऐसी *खोजो और पाओ* गतिविधि के लिए समय रखेंगे – उसी प्रकार जैसे खेलों और पी.टी. के लिए अलग से समय दिया जाता है। इस पीरियड में छात्रों को पुस्तकालय तथा जानकारी केन्द्र में स्वयं जवाब तलाशने के लिए आज़ाद छोड़ दिया जाए। क्यों कि हमारे शिक्षा तन्त्र के चलते भी उन के मन में बहुत से सवाल होते हैं – जैसे कि मैंने उन से सवाल-जवाब की प्रक्रिया में हमेशा पाया। जवाब ढूंढने की प्रक्रिया से मैंने स्वयं भी बहुत कुछ सीखा है।